Satya ka Avahan

सत्य का आवाहन

Invoking the Divine

Year 6 Issue 1 January–February 2017
Membership Postage: Rs. 100

Sannyasa Peeth, Munger, Bihar, India

Hari Om

Satya ka Avahan is a bilingual and bi-monthly magazine compiled, composed and published by the sannyasin disciples of Sri Swami Satyananda Saraswati for the benefit of all people who seek health, happiness and enlightenment. It contains the teachings of Sri Swami Sivananda, Sri Swami Satyananda and Swami Niranjanananda, along with the programs of Sannyasa Peeth.

Editor: Swami Yogamaya Saraswati

Assistant Editor: Swami Sivadhyanam Saraswati

Published by Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger – 811201, Bihar.

Printed at Thomson Press India (Ltd), Haryana

© Sannyasa Peeth 2017

Membership is held on a yearly basis. Late subscriptions include issues from January to December. Please send your requests for application and all correspondence to:

Sannyasa Peeth
Paduka Darshan
PO Ganga Darshan
Fort, Munger, 811201
Bihar, India

✉ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request

Front cover & plates: Pashupata Astra Yajna, Munger, 2016

SATYAM SPEAKS – सत्यम् वाणी

In every science there are dedicated souls who surrender their lives to the perfection of their science. The yogis retire into seclusion for a period of time not only to perfect themselves, but to experience their souls. These divine souls work with a higher purpose, just like the scientists who work in their labs with such total dedication to their research that they are unmindful of the rest of the world.

—Swami Satyananda Saraswati

हर क्षेत्र में ऐसे कर्मठ लोग होते हैं जो अपनी विद्या को सिद्ध करने के लिए पूरा जीवन समर्पित कर देते हैं। योगीजन एकान्तवास का सेवन न केवल स्वयं को परिष्कृत करने के लिए करते हैं, अपनी आत्मा का अनुभव पाने के लिए भी। ऐसे महापुरुष एक उच्च प्रयोजन के लिए प्रयासरत रहते हैं, उन वैज्ञानिकों की तरह जो अपनी प्रयोगशालाओं में इतने तन्मय होकर अनुसंधान करते हैं कि वे दुनिया से बेखबर हो जाते हैं।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

Published and printed by Swami Shankarananda Saraswati on behalf of Sannyasa Peeth, Paduka Darshan, PO Ganga Darshan, Fort, Munger – 811201, Bihar.
Printed at Thomson Press India (Ltd), 18/35 Milestone, Delhi Mathura Rd., Faridabad, Haryana.
Owned by Sannyasa Peeth **Editor**: Swami Yogamaya Saraswati

Satya ka Avahan
Invoking the Divine

सत्य का आवाहन

Year 6 Issue 1 • January–February 2017

न तु अहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्त्तिनाशनम्॥

"I do not desire a kingdom or heaven or even liberation. My only desire is to alleviate the misery and affliction of others."

—Rantideva

Contents

2 Adhyatma Yoga
4 एक चीज जो निश्चित है
5 साधना पथ
6 Freedom Yoga
9 Nachiketa's Three Boons
13 पंचाग्नि विद्या की परम्परा
18 The Path of Nachiketa
22 ग्रंथि भेदन
25 The Three Knots
28 Granthi Bhedan in Different Traditions
32 सहनशीलता की साधना
33 संन्यास जीवन का आधार– त्याग और तपस्या
36 Pashupata Vidya
39 सकारात्मक संकल्प
41 The Tradition Continues
45 आभार भरे उद्‌गार
47 Seek Govinda
48 उपदेश-पंचकम्

Adhyatma Yoga

Swami Sivananda Saraswati

- This world has no real, independent existence. It appears to exist, because Brahman or the Absolute exists forever.
- There is no body before its birth; there is no body after its death. Think and feel that which you see now does not really exist. That which does not exist in the beginning and end does not really exist in the middle also.
- Sensual pleasure is the womb of pain. The cause for pain is absence of pleasure. Sensual pleasure is imaginary, illusory, fleeting and tantalizing. Abandon sensual pleasure and rejoice in the Eternal Bliss of Atman.

- He who has destroyed desire is really a harmonized, peaceful and happy man.
- Slay anger and desire. Control the thoughts. Know thyself. You will enjoy Supreme, Everlasting Peace.
- Desire is insatiable. It is born of *rajas* or passion. It is born of ignorance. It is an enemy of peace, wisdom and devotion. Master first the senses and then slay this desire which abides in the senses, the mind and intellect ruthlessly, through enquiry, discrimination, dispassion, devotion and meditation.
- Anger also is born of rajas. When a desire is not gratified, anger manifests itself. Anger is a form of desire only. Slay this anger through *vichara*, discrimination, patience, love, meditation, identification with the ever-serene Atman.
- Subdue the lower self by the Higher Self. Annihilate all desires. Slay egoism. Destroy all attachments. Meditate and rest peacefully in your own Innermost Atman, which is Existence, Consciousness and Bliss Absolute.
- If you want to attain immortality, go beyond the pairs of opposites.
- Endure bravely heat and cold, pain and sorrow, loss and failure, censure and dishonour. You will attain equanimity of mind, peace and poise.
- If you are balanced in pleasure and pain, gain and loss, victory and defeat, sin will not touch you; you will not be affected by the fruits of your actions.
- Keep the senses from attraction and repulsion. Attain mastery over the senses. Discipline the senses and the mind. You will not be affected now even if you move among sense-objects.
- He who is free from desires, cravings, attachment, egoism, and mine-ness, attains the Peace of the Eternal.
- Stand up. Have mastery over the senses. Be devoted to Atman. Destroy all doubts through satsang, study, enquiry, meditation and wisdom. ■

एक चीज जो निश्चित है

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

यहाँ एक चीज निश्चित है—सबकी मृत्यु अवश्य होगी। यहाँ एक चीज निश्चित है—युवावस्था मिट जाएगी। एक चीज यहाँ निश्चित है—आप जन्म-मृत्यु के चक्कर में फँस जायेंगे और रोगों से पीड़ित होंगे। एक चीज यहाँ निश्चित है—धन-सम्पत्ति आपको अंतिम सन्तुष्टि नहीं प्रदान कर सकती। एक चीज यहाँ निश्चित है—केवल साधना ही आपके स्वभाव को बदल सकती है, आपको दिव्य बना सकती है और ईश्वर-प्राप्ति में आपकी सहायता कर सकती है।

माया आपको विभिन्न तरीकों से प्रलोभन देती है। मछुआरा काँटे पर जब थोड़ा-सा चारा लगाता है, वह ऐसा इसलिए नहीं करता कि मछली से उसको प्रेम है। मछली खाने की इच्छा से काँटे की ओर बढ़ती है और पकड़ी जाती है। एक शिकारी जाल फैलाता है और थोड़े-से दाने फेंक देता है। पक्षियों की भूख मिटाने के प्रयोजन से नहीं, बल्कि उन्हें पकड़ने के लिए वह ऐसा करता है।

इसी प्रकार माया मनुष्य को जाल में फँसाना चाहती है। वह विषय-वस्तुओं पर थोड़ी-सी चमक, थोड़े-से सुख की परत चढ़ा देती है। विषय केवल उस व्यक्ति के लिए सुख के केन्द्र हैं जो मोहित है, जिसमें सत्य को जानने के लिए शुद्ध, सूक्ष्म बुद्धि का अभाव है। जिस प्रकार मछली काँटे में या पक्षी जाल में फँस जाता है, उसी प्रकार मनुष्य माया के जाल में फँस जाता है। वह घबरा जाता है और यह नहीं जानता कि उस जाल से कैसे निकला जाए।

बहुत कष्ट और पीड़ा सहने के पश्चात् व्यक्ति को पता चलता है कि उसे धोखा हुआ है। जिस व्यक्ति में विवेक और वैराग्य है, जो आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन करता है, जो निरन्तर प्रार्थना करता है, जो सत्संग में जाता है—केवल वही व्यक्ति संसार-सागर को पार कर ईश्वर-दर्शन कर सकता है, परमानन्द को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर-दर्शन में अनन्त प्रकाश है। उसमें न पूर्व है न पश्चिम, न गम है न खुशी, न भूख है न प्यास। वहाँ पूर्ण खामोशी है, इन सभी दृश्यों के पीछे महान् शान्ति है। ■

साधना पथ

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

साधना का पथ शुरू में लम्बा लगता है, किन्तु बाद में सहसा छोटा हो जाता है। साधना का पथ कठिन नहीं है। अगर कठिन भी मानो तो बतलाओ कि जीवन में सरलता कहाँ है? जीवन की जिन परिस्थितियों में हम अभ्यस्त हैं, वे कठिन होने पर भी मन को नहीं खलतीं। साधना एक नया अभ्यास है, मानव में स्थित पशु पर देवता की विजय के अभियान का पहला कदम। इसके अभ्यास में कुछ समय तो लगेगा ही। लगन और साहस के साथ तुम इस नये अभ्यास को जीवन में घुलाते-मिलाते चलो। जो गुरु से भेद पा चुके हैं, उन्हें साधना-पथ आसान लगता है। इसलिए महापुरुषों ने गुरु को योग मार्ग में अनिवार्य माना है।

साधक को अपना संकल्प याद रखना चाहिए। प्रश्न यह नहीं कि तुमने कितनी साधना की है, बल्कि यह कि संकल्प याद है या नहीं। संकल्प याद रहे और लगन बनी रहे, तो तुम्हें सिद्धि मिल ही जाएगी। अत: अपने सत्संकल्पों को दुहरा लो। गत वर्ष की प्रगति का विहंगम अवलोकन कर लो।

साधना में कभी-कभी नागे भी पड़े तो पड़ने दो। धुन नहीं छोड़ना। अनिश्चित समय में साधना करने से कभी-कभी बेहद एकाग्रता सधती है, किन्तु प्रयत्न करो कि साधना का समय पक्का हो जाए। तुम्हारे लौकिक उत्तरदायित्व जो भी हों, हुआ करें, मैं फिर से तुम्हें परम लक्ष्य की ओर सचेत करता हूँ। सभी लौकिक कर्त्तव्यों के बावजूद तुम्हें अपना जन्म-सिद्ध अधिकार पाना है और शेष समाज को मदद पहुँचानी है।

साधना में सच्चाई और आत्मसमर्पण अमूल्य निधियाँ हैं। इस मार्ग में हार मानने से काम नहीं चलता। मार्ग पर चलने वालों को थकावट तो लगेगी ही। लेकिन चलते रहने पर मंजिल मिल ही जाएगी। निरन्तर चलना ही जरूरी है। धैर्य भी जरूरी है साधना में। यदि मनुष्य अपना लक्ष्य न भूले और लक्ष्य प्राप्ति के लिए अपने को पूरा समर्पित कर दे, तो सफलता अवश्य मिलती है। साधक को लक्ष्य की सुरति और उसे प्राप्त करने का मद या पागलपन होना चाहिए। ■

Freedom Yoga

Swami Satyananda Saraswati

When will we be free? Freedom is not a commodity that can be purchased politically, socially or professionally. Freedom is an understanding of ourselves in relation to others, the part in relation to the whole. We will never be free until we learn to share with others. There is always someone with less than us, no matter how little we have. There are thousands of ways to share our knowledge, abilities, facilities, experience, faith, belief, money, property, food, clothes, tools, books and ideas.

It is not by accumulating and enriching ourselves that we become free. We become free by giving what we have to others.

The different ways and forms of our sharing are the measure of our freedom, of our capacity to realize God. By God, I do not mean that Holy Father who lives up somewhere in heaven, but that divinity which resides in us and in all beings, sentient and insentient, in equal measure.

It is of no use building up anything for ourselves. All these accumulations become our bondage, our barrier. They keep us fenced off from the higher reality, the vision of totality. The more we give, the greater we become, because we learn to see ourselves in others. Their suffering becomes our suffering and their joy our joy.

A life of selfish acquisition and material satisfaction is not worth living or dying for. At the end of it, what will we have that is still ours? Nothing – no money, no possessions, no property, no house, no car, no job, no family, no relation, no friend, will ever pass out of this life with us. The only thing that will go with us on that last day will be our *karmas*, our deeds, whether positive or negative, selfish or unselfish, and nothing else.

That is why in this life it is very important to always be on the lookout for opportunities to give, to serve and to contribute something for the welfare and the betterment of another. This is the way to attain happiness, fulfilment and transcendence, not only in this life, but in the life to come. With every positive deed, we remove the shackles of ten years of negative deeds. We become brighter, younger, healthier and more vital.

What is it that makes us dull, old, sick, and oppressed? The cause is not external; it is our internal limitations that bind us to a narrow, selfish view of life. That is the cause of all our suffering. In order to remove our suffering, we must remove our limitations. We must live to help and serve others and not ourselves. We must reach beyond our immediate family, our personal needs and develop a broader identity that encompasses the entire humanity, the entire creation, and the entire cosmos. This is freedom – not any political, social or religious ideology.

I have taught only one yoga, that which leads to freedom. Please do not think that I am speaking against any yoga teacher or institution, but I feel that the present concept and direction of yoga must change. Yoga must be unified, freed of separate ideals, power struggles and narrow concepts of spiritual attainment.

Attitudes must change, barriers must come down, so that a new yoga can emerge. This will be the yoga of unity, of giving, of sharing and uplifting, as one team. As organs and parts of one body, we must work together in one connected and concerted effort to serve humanity, to share our knowledge, our gifts, our capacities, our labour, for the common good, for a better world.

When we are able to see the disease, disharmony and distress of others as our own, and begin to alleviate and remove it by our united effort, then our yoga will need only one banner. Call it freedom, call it *mukti*, call it bliss. If we are involved in any yoga for our personal development, knowledge and evolution, that yoga is not going to help us. Finally, we will have to leave it and search for another path.

The ways of the world are many, but the way to God, to spirit, to divinity, is one. Dedication to the upliftment of others, seeing others in ourselves and ourselves in others; this is the ultimate yoga. There is no other way to change our limited egocentric vision to a cosmic vision. This is the path and this is the yoga of the new millennium – call it 'freedom yoga'. ■

THOUGHTS AT THE CONCLUSION OF
PANCHAGNI SADHANA 2016

Nachiketa's Three Boons

Swami Niranjanananda Saraswati

Many thousands of years ago, there was a sage by the name of Vajashravasa. He was one of the famous sages of ancient India who had dedicated and devoted his life to the propagation of spiritual knowledge. He belonged to the Shaivite tradition and was one of the masters of the tradition. He had a family, including wife and children, and they all lived together in the gurukul, serving society. They were a very happy family.

One day, the sage decided to perform a yajna. As part of the yajna ceremonies, he was required to give alms of cows and wealth. A grand yajna was performed, and a lot of wealth was distributed and many cows were given. However, there were more people than items of alms, so the rishi said, "We have given away all the best that we had. Now, let us bring out the second-quality items." The second quality consisted of animals that were undernourished, sick, or old. Nonetheless, the second lot was brought out to be given away.

While the animals were being distributed, one of the rishi's sons, whose name was Nachiketa, felt disturbed and went to his father and asked, "Father, why are you giving the sick cows in charity?" The father did not have the time to explain what was happening, so he did not answer and continued giving. After some time Nachiketa again asked his father, "Why are you giving away the old and the sick cows?" Again his father did not answer. Nachiketa felt a bit annoyed at not receiving any reply. Now he asked, "To whom will you give me away?" His father was enraged. He said, "I will give you to Yamaraj, the god of death."

According to the story, Nachiketa went to the realm of Yamaraj, the king of death. There he spent three days and three nights waiting, as Yamaraj had gone out to collect souls from the world and was not at home. During his absence, Nachiketa just stood at his door. When Yamaraj returned, he was informed that a young brahmin boy had been standing at the gate, wanting an audience with him. Yamaraj went out to see who the boy was, and found Nachiketa standing quietly at the gate.

According to the version of this story in the *Taittiriya Brahmana*, Yamaraj asked him, "How long have you been here?" Nachiketa replied, "Three days and three nights." Yamaraj next asked, "What have you eaten and drunk during these three days?" To this Nachiketa gave a beautiful answer. He said, "I did not take any grains or food or water, but the first night, *prajam ta iti* – I partook of society. The second night, *pashu-gvam ta iti* – I partook of myself. And the third night, *sadhukrityam ta iti* – I partook of ascetic-like action." This indicates an interesting progression of thought, which is also the foundation of the panchagni sadhana.

Nachiketa is just a young boy of nine or ten years. He lives in the gurukul with his father, who is a rishi, a saint, a sage. They follow a daily routine of discipline, sadhana, worship and invocation, a discipline of life. Nachiketa is not an average boy living a conventional social life; he is a disciple of a guru.

He is the son of a master, who learns from his father all the knowledge and practices of spiritual life. Nachiketa knows the tradition, the sadhana and the lifestyle followed in the Shaivite tradition.

Now, having taught all he knew, Vajashravas told his son, "I can lead you up to a certain point with my knowledge, beyond that you need guidance from the gods." Therefore, when Nachiketa spent three nights at the door of Yama and was asked the question, "What did you eat?" and replied, "Prajam ta iti", it was not an ordinary answer. What does the word *prajam* mean here? The community, family, parents, friends, associates, all form part of one's society. The first night, Nachiketa had thought, 'What is happening to my father? I hope he is not sad for having sent me to the door of Yama. I hope people are not cursing him for giving old and infirm animals in charity. I hope people pardon him. I hope there is no grief.' All Nachiketa's thoughts on the first night were in relation to his people. They were not about himself, but about his people: parents, friends, associates, members of the family, all those who had come for the yajna. Therefore he said, "The first night I partook of society."

Then he said, "The second night I partook of myself." On the second night he started to think, 'Was I at fault? Did I say something wrong? Did I do any wrong to give grief to my parents? Did I not ask the right questions? Did my actions bring pain and suffering to my parents? Did my absence create queries in the minds of people?' Thus, on the second night his thoughts were about himself, trying to figure out the best course of action that he could have taken, trying to understand what is correct and appropriate. That is what was meant when he said, "The second night I was consuming myself, I was eating myself, I was seeing myself."

The three nights of Nachiketa represent three states of mind: the first state of mind was in relation to the society and the world of senses, the connections out there; the second was in relation to himself; the third was in relation to higher pursuits

in life. From society, to the individual, to higher pursuits, these are the three states that he experienced during these three nights.

Yama said to him, "I will give you one boon for each night. What will be your first boon?" Nachiketa said, "Let my father be happy, let him not feel that he has done anything wrong by sending me to you, let him be free of all criticism and comments from other people. There should be peace and happiness in the family, in society, in everybody who has come to participate in my father's yajna." For the first boon, his thoughts were in relation to society.

Yamaraj agreed and said, "What do you want as your second boon?" Nachiketa said, "I want to know from you the way to live the correct life, the way to think and act appropriately." Yamaraj imparted to him the relevant teaching, and said, "What do you want for your third boon?" Nachiketa said, "I want to know how to attain the imperishable state of consciousness, which goes beyond death and decay." As a result, Yamaraj taught him the panchagni sadhana. Thus another name for the fires of panchagni is *Nachiketa agni*, the fire of Nachiketa.

– 10 May 2016, Pashupata Astra Yajna, Satyam Udyan,

पंचाग्नि विद्या की परम्परा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आज से यहाँ पर पंचाग्नि की पूर्णाहुति के अवसर पर पाशुपतास्त्र यज्ञ का कार्यक्रम आरम्भ हुआ है। पाशुपतास्त्र यज्ञ एक बहुत प्राचीन विधि है जिसमें भगवान शिव की शक्ति का आवाहन किया जाता है। यह एक अन्य प्राचीन परम्परा का अंग है जिसे हमलोग कहते हैं पाशुपत परम्परा। जरा सोचिए कि आदिकाल में जब कोई ऋषि, मुनि, तपस्वी या साधु नहीं थे, तब उस समय कौन-सा चिंतन, कौन-सा विचार, कौन-सा धर्म, कौन-सी परम्परा प्रचलित रही होगी? हमारे यहाँ कहा जाता है कि उस समय पाशुपत परम्परा प्रचलित थी जिसके मूल प्रचारक, शिक्षक और प्रणेता रहे हैं भगवान शिव।

इस पाशुपत परम्परा के पाँच अंग हैं। पहला है पाशुपत सम्प्रदाय। सम्प्रदाय का मतलब समूह, जैसे यह आश्रम है जहाँ लोग आते हैं, रहते हैं, सीखते हैं, जाते हैं। जहाँ पर विद्या से व्यक्ति जुड़ सके उसे कहते हैं सम्प्रदाय। दूसरा अंग है दर्शन—इस सम्प्रदाय की सोच क्या है, विचार क्या है, लक्ष्य क्या है, उद्देश्य क्या है, साधना क्या है, आचार क्या है, व्यवहार क्या है? तीसरा आयाम है पाशुपत योग। देखा जाए तो पाशुपत योग ही मूल योग रहा है, जिसमें पाँच अंग थे—स्पर्श योग, भाव योग, अभाव योग, मंत्र योग और महायोग। इन पाँच से फिर कालान्तर में हठयोग, राजयोग, कुण्डलिनी-योग, क्रियायोग आदि का विकास हुआ है। चौथा अंग था पंचाग्नि, एक साधना, एक तपस्या के रूप में और पाँचवा अंग रहा पाशुपत अस्त्र का संधान।

पाशुपत विद्या के ये पाँच अंग माने जाते हैं और इसलिये चाहे वह पंचाग्नि हो या पाशुपत अस्त्र का आवाहन, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। यही कार्यक्रम आज से यहाँ पर आरम्भ हुआ है, सबेरे से स्थापना हुई है, अब मंत्रों का पाठ आरम्भ होगा। पाशुपत अस्त्र के मंत्र बहुत प्राचीन हैं, आप सुनेंगे तो अंतर मालूम पड़ेगा। जब यहाँ पर इन मंत्रों का पाठ हो रहा है उस समय आप अपने गुरु मंत्र या पंचाक्षरी मंत्र या महामृत्युंजय मंत्र का जप पंडितों के साथ कर सकते हैं।

इतिहास के अनुसार पाशुपत अस्त्र का आवाहन कृष्ण काल में अर्जुन ने किया था, और उसके पश्चात् फिर इन मंत्रों का श्रवण इस धरती पर नहीं हुआ। महाभारत के बाद तो बहुत बड़ा विध्वंस हुआ था, इन मंत्रों को जानने या बोलने वाला था भी नहीं। तो यह विद्या, यह आराधना एक प्रकार से लुप्त हो गई थी, लेकिन हमारी पंचाग्नि साधना के दौरान पुन: इसका एक प्रकार से पुनर्जागरण हो रहा है, और हमें इस बात की प्रसन्नता है क्योंकि दोनों का आपस में गहन सम्बन्ध है जिसके बारे में थोड़ा जानना आवश्यक है।

एक समय एक ऋषि थे जिनका नाम था वाजश्रवा। ये वाजश्रवा ऋषि शिवतत्त्व के बहुत बड़े ज्ञानी और प्रचारक रहे हैं। एक समय उन्होंने एक बहुत विशाल यज्ञ का आयोजन किया और उस आराधना के दौरान उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लोगों में बाँट दी। गायों का भी दान किया और जब लोग बचे रहे तो जो गायें उतनी स्वस्थ भी नहीं थीं, उनको लाया गया दान के लिये। जब इन गायों को लाया गया तो ऋषि वाजश्रवा के पुत्र ने, जिसका नाम था नचिकेता, अपने पिता से पूछा, 'आप बीमार गायें क्यों दे रहे हैं?' अब पिताजी को तो यज्ञ के दौरान समझाने का समय नहीं था और वे तो स्वयं ऋषि थे। उन्हें मालूम था कि क्या उचित है और क्या अनुचित, हमें क्या नहीं देना चाहिये और क्या देना चाहिये। उन्होंने गलत तो किया भी नहीं था, लेकिन जब बार-बार नचिकेता उनसे यही प्रश्न पूछता है, तो व्यस्तता के कारण उन्हें थोड़ा क्रोध आया। तभी नचिकेता ने बाल सुलभ रूप से पूछ दिया, 'मुझे किसको देंगे?' उन्होंने झुंझलाकर कहा, 'मैं तुम्हें यमराज को देता हूँ।'

यह है सामान्य कहानी जो प्राय: सभी जानते हैं, लेकिन तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक और चीज बताई गई है कि जब वाजश्रवा के मुँह से ये शब्द निकल गये तो उन्हें लगा कि मैंने यह क्या कर दिया, अपने ही बच्चे को यमराज को दान में दे दिया। पर वे ऋषि थे, यह आभास भी उन्हें हो गया कि जिस विद्या का, जिस साधना का अभी शिव तत्त्व में अभाव है, वह नचिकेता यमराज से प्राप्त कर लेगा, जान पायेगा। शिव तत्त्व में किस विद्या का अभाव था? मृत्यु पर विजय कैसे प्राप्त की जाए, यह कोई नहीं जानता था और यही चीज वाजश्रवा जानना चाह रहे थे। उन्होंने नचिकेता से कहा कि जब तुम यमराज के यहाँ जाते हो और वे तुम से पूछेंगे कि तुम्हें क्या चाहिये तो तुम उनसे पूछना कि मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का तरीका क्या है।

नचिकेता अपने पिता का आदेश मानकर चले गया यमराज के द्वार। वहाँ जब पहुँचा तो यमराज थे नहीं, वे भ्रमण के लिये निकले थे। तीन दिन तक नचिकेता यमराज के द्वार पर प्रतीक्षा करते रहा। जब यमराज आते हैं और उनको मालूम पड़ता है कि एक ब्राह्मण लड़का मेरे द्वार पर कई दिनों से भूखा-प्यासा बैठा है, तो वे उठकर जाते हैं नचिकेता के पास और उससे बातचीत शुरू करते हैं। पहले पूछते हैं कि तुम यहाँ पर कितने दिनों से हो। वह कहता है, तीन दिन और तीन रात। उन्होंने पूछा कि इन तीन दिनों में कुछ भोजन किया है। नचिकेता ने कहा, 'हाँ, किया हूँ, भूखा नहीं हूँ।' यमराज को आश्चर्य हुआ, उन्होंने पूछा, 'मेरे महल से तो मेरे नौकरों ने तुम्हें कुछ भोजन दिया नहीं, फिर तुमने खाया क्या?'

तब नचिकेता कहता है कि पहले दिन *प्रजां त इति,* जिसका मतलब होता है सामाजिक भक्षण। पहले दिन नचिकेता सोच रहा था कि मैं यहाँ आ गया हूँ, घर में क्या हो रहा होगा, पिताजी का यज्ञ हुआ है कि नहीं, पिताजी को क्या कष्ट हो रहा होगा, मेरे नहीं रहने से वहाँ पर उपस्थित लोगों के मन में क्या विचार आता होगा, वे मेरे पिता के बारे में क्या सोचते होंगे। मतलब वह अपने समाज के बारे में, परिवार के बारे में पूरा सोच रहा था।

दूसरे दिन *पशूँस्त इति,* इसका भक्षण किया। पशु व्यक्ति खुद है, यानि मैंने अपना भक्षण किया। अपने भक्षण का क्या मतलब? जो मैं हूँ उसका दूसरों के साथ क्या सम्बन्ध है? मेरा अस्तित्व आप कैसे परिभाषित करते हो? सम्बन्धों के माध्यम से। घर-परिवार में दस व्यक्ति हैं और हरेक के साथ एक सम्बन्ध है—कोई चाचा है, कोई मामा है, कोई भतीजा है, कोई पिता है, तो कोई बहन है। अपने साथ हमेशा एक सम्बन्ध का आभास होता है—मैं अपने पिता का पुत्र हूँ या मैं अपने गुरु का शिष्य हूँ और जहाँ पर अपनी पहचान होती है वह है पशुता। आत्म-निरीक्षण करते हुए मैंने स्वयं को देखा कि मैं विचलित क्यों हो रहा हूँ, मैं प्रसन्न क्यों हो रहा हूँ, मैं यहाँ क्यों आया हूँ, मेरे साथ क्या घटना घटी—ये सब चीजें अपने साथ देखीं, अपने सम्बन्धों को देखा।

फिर यमराज पूछते हैं, तीसरी रात तुमने क्या भक्षण किया? नचिकेता कहता है *साधुकृत्यां त इति*—अन्तिम रात को मैंने साधुकृत्य का भक्षण किया। साधु का मूल कर्म क्या होता है? कई लोग कह सकते हैं परहित या परोपकार, लेकिन नचिकेता के

अनुसार साधु का मूल कृत्य है त्याग। आखिर साधु क्यों बने? परोपकार करने के लिये या त्याग करने के लिये? अगर परोपकार के लिये तो साधु बनने की आवश्यकता नहीं है। परोपकार तो कोई भी आदमी कर सकता है, गधा भी करता है वजन ढोकर। साधु बने हो तो त्याग के लिये। त्याग केवल साधु करता है, संसारी नहीं। हमें अपनी आसक्ति को छोड़ना है, माया, मोह, ममता, द्वेष और घृणा को छोड़ना है। जो भी चीज तुम्हारे साथ है, उसे एक-एक करके अब छोड़ते जाओ। वही साधुता है। जब नचिकेता कहता है कि तीसरे दिन मैंने साधुकृत्य का भक्षण किया तो उसका क्या अभिप्राय

है? वह सोचने लगा कि मैंने अब तक जो भोग किया है, अब तक जो मेरे सम्बन्ध रहे हैं, उससे मुझे मिला क्या? अशान्ति मिली है, दु:ख मिला है, झगड़ा हुआ है, क्रोध हुआ है, संघर्ष हुआ है। भोग और सम्बन्ध का यही परिणाम है। मैं कैसे इनसे मुक्त हो सकता हूँ? त्याग से। इसलिए नचिकेता कहता है कि मैंने साधु कृत्य का भक्षण किया।

यमराज नचिकेता के इन तीन उत्तरों से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, ठीक है, तीन दिनों तक तुमने विभिन्न चीजों का भक्षण किया, अब तुम अन्न ग्रहण करो। और तुम तीन दिन जो अन्न के बिना रहे हो, उसके लिए मैं तुम्हें तीन वरदान प्रदान करता हूँ, तुम जो चाहो माँग सकते हो।

प्रजां त इति के लिये नचिकेता क्या वरदान माँगता है? यही कि समाज में कहीं भी शोक न हो। कोई भी मेरे पिता को दोष न दे, मेरे पिता अपने निर्णय से दु:खी न हों कि उन्होंने मुझे यमराज को सौंप दिया है। मतलब पिता के लिये, परिवार के लिये, समाज के लिये पहला वरदान माँगता है। किसी के मन में कोई क्लेश, चिंता या दु:ख न हो, यह पहला वरदान प्रजा के लिये है। मैंने उनके बारे में सोचकर भक्षण किया है, इसलिये पहला वरदान समाज के लिये सुख की कामना, शान्ति की कामना और समृद्धि की कामना। यही संकल्प हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी का भी रहा है, सुख, शान्ति और समृद्धि का।

यमराज ने कहा, 'तथास्तु, दूसरा वर माँगो।' नचिकेता ने कहा कि मुझे कोई ऐसा तरीका बतलाओ जिससे मैं अपने जीवन को उत्तम बना सकूँ। मेरे कर्म उत्तम हों, मेरा व्यवहार उत्तम हो, सब कुछ ठीक तरीके से कर सकूँ ताकि धर्म का उत्थान हो। तीसरे वरदान में वह कहता है कि मुझे अब उस गुप्त विद्या की शिक्षा दो जिससे संसार अभी वंचित है। यमराज पूछते हैं, 'कौन-सी गुप्त विद्या?' 'वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है।' यमराज कहते हैं, 'देखो, वह विद्या संसार में है ही नहीं क्योंकि संसार में अमरत्व का कोई स्थान नहीं है। जब तक संसार मैं द्वैत है, परिवर्तन है, जन्म और मृत्यु निश्चित हैं। इसलिये तुम कुछ और माँगो।' नचिकेता कहता है, 'नहीं, मुझे इसी का ज्ञान चाहिये।' यमराज के साथ उसका वाद-विवाद होता है और अन्त में यमराज उसे जो शिक्षा देते हैं उससे मनुष्य मृत्यु को समझ पाता है, मृत्यु से भयभीत नहीं होता और मृत्यु को जीवन के अगले पड़ाव के रूप में देखता है। तीसरे वरदान में यमराज ने नचिकेता को मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का जो तरीका बतलाया वह थी पंचाग्नि विद्या। उसके बाद से फिर पंचाग्नि की विद्या इस मृत्युलोक में एक साधना के रूप में प्रतिष्ठित होती है। इसके पूर्व पंचाग्नि विद्या साधना के रूप में प्रतिष्ठित नहीं थी। केवल शिक्षा थी जिसे देवता या सिद्ध लोग ही जानते थे, समझते थे और करते थे। लेकिन नचिकेता के पश्चात् यह समाज में एक साधना के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

– 10 एवं 11 मई 2016, पाशुपतास्त्र यज्ञ, सत्यम् उद्यान

The Path of Nachiketa

Swami Niranjanananda Saraswati

We were talking about the story of Nachiketa. He spent three nights at the gate of the kingdom of death, and when Yamaraj, the lord of death, was informed that a young boy was waiting at the gate to enter his kingdom, he went to see Nachiketa and asked him, "How long have you been here waiting to enter?" Nachiketa replied, "Three days and three nights." Yamaraj said, "You have been waiting here for three days and nights without food and water. How have you survived?" Nachiketa said, "I have consumed. I have partaken of certain things which have filled me up." Yamaraj asked him, "What did you partake of the first night?" Nachiketa answered, "*Prajam*

ta iti – I partook of society. I took bites from society." "On the second night, what did you eat?" He said, "I took a bite of the animal." "And on the third night, what did you eat?" Nachiketa said, "I took a bite of the actions of a sadhu."

These are clever answers. The first answer, 'Prajam ta iti', indicates that although being an individual, the human being is part and parcel of the human society. The destiny that each one lives is individual, yet the ideas that are imposed on every individual are a reflection of society. Anything that you live in your life is a gift to you by society; it is bhoga. What was the society of Nachiketa that he was thinking of? His society included those involved in his father's work, the people to whom alms were given, the people who were grieving for him, and so on. In his mind, he saw this society all around and its reactions: some experiencing grief at his absence, some angry to receive old cows in charity, some disappointed, some agitated. He saw all that as *bhoga*, something that you receive and consume. He was able to observe and witness the entire social environment and yet be separate from it.

Nachiketa's second answer was: "*Pashu-gvam ta iti* – I partook of the animal." The animal is 'me', the individual. An animal recognizes *sambandh*, relationships. In understanding this animal, one has to ask, "Where is my sambandh?" Your connections and relationships are with your father, mother, family, friends, and a few other people in society. What has been achieved through your connections? Have you achieved the satisfaction, fulfilment, happiness, enjoyment and wholesomeness that you crave in life through your connections? Or have you only received expectations, demands and criticism? If so, there must be something wrong in your relationships and connections. Nachiketa was observing all this. He was observing the animal, the 'me and my connections'.

Nachiketa's third answer was: "*Sadhukrityam ta iti* – I ate the actions of the sadhu." What is the main action or focus of a sadhu? Many people will say *paropakara,* helping others. That is a limited understanding. Any good person can help another

person. You don't need to be a sadhu for that. Even a donkey helps by carrying the load of others. Doing good work is not the ultimate action of a sadhu. The ultimate as well as the first action of a sadhu is renunciation.

When you become a sadhu, then the main idea is to renounce, *tyaga*. You become a sadhu with the idea that you will renounce your family, friends, society, your ego identity, hatred, jealousy, greed, happiness, and remain free from the grip of pain and suffering. Therefore, for a sadhu, the main action is letting go. Helping others is a personal choice, but the principle a sadhu has to live by is letting go. On the third night, this was the idea Nachiketa dwelled upon. He partook of *sadhukrityam,* renouncing, letting go.

Nachiketa gave beautiful answers about himself and what he was experiencing. If you analyze the three states of mind that Nachiketa went through, the first day he experienced the world and the chatter of the world. On the second day, he experienced himself and his connection to the world. On the third day, he began to release his associations and attachments to the world and became free. Hearing his answers, Yamaraj said, "I am pleased with you. I will give you three boons. Ask."

For the first boon, Nachiketa said, "Let there be peace in society. Let nobody have any grief or frustration or irritation or anger. Let peace prevail. *Sarvesham swastirbhavatu, sarvesham shantirbhavatu, sarvesham poornam bhavatu, sarvesham mangalam bhavatu*." The god of death said, "Granted. Your father is happy; he is not grieving any more. Your family is content; they are not missing you any more. Your friends are happy; they are not disturbing anything any more. Your society is content; there is no complaint against anybody any more. There is peace and harmony prevailing in your society."

For the second boon, Nachiketa said, "Teach me how to do the right thing at the right time, the correct thing in the correct manner. Tell me ways to improve myself, so I am more useful in doing good work and not a barrier." To that also Yamaraj said, "Granted. Your life will be full of goodness."

For the third boon, Nachiketa said to Yamaraj, "Tell me how I can overcome death." Yamaraj said, "Sorry. Not possible. In this material world death is inevitable and there is no way that you can avoid death, no matter who you are. In this world of duality nobody can escape death, not even God. If He were to come into this world, even God would have to die at the end of His or Her life." Nachiketa said, "I don't agree with you. I think there is something more permanent and constant than this fleeting awareness and momentary life in the span of eternity." Yamaraj said, "Yes, there is. However, that is not a path everybody can tread." Nachiketa said, "I am willing to tread that path. I want to know this *vidya*, this knowledge, this system, this way. Whether everybody is able to do it or not does not matter. The way exists and I want to learn it." Yamaraj relented and said, "Okay, I will teach you the way." He then gave Nachiketa the knowledge of *panchagni*, the five fires, and therefore these five fires came to be known as *Nachiketa agni*, the fire of Nachiketa.

The knowledge of the five fires represents the death of the lower nature of the individual, so that a new birth can take place. This new birth is in jnana, in vidya. The five fires represent the five chains that hold you down to this plane: *kama*, passion; *krodha*, anger; *moha*, infatuation; *mada*, arrogance; and *lobha*, greed. These are the five lower tendencies that keep you grounded to this dimension. The moment you transcend them, your mind becomes universal. The mind becoming universal is the attainment of immortality. It is awakening in the spiritual dimension, not death. It may be death of the material dimension, yet the consciousness remains constant and the same in that transcendental state. That is the state of identifying with the permanent tattwa of existence in the divine transcendental realm and overcoming the lower tendencies that are the catalysts for decay and death.

This is the story of Nachiketa and the beginning of panchagni.

– 11 May 2016, Pashupata Astra Yajna, Satyam Udyan

ग्रंथि भेदन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

सभी आध्यात्मिक परम्पराओं में उपलब्धि का जो मूल आधार है उसमें मन की शान्ति प्रथम है। जब तक मन शान्त नहीं होता, एकाग्र नहीं होता, तब तक कुछ संभव नहीं होता। साधना और संसार में सफलता के लिये अपने मन को साधे रखना बहुत आवश्यक है, और जो बात नचिकेता ने यमराज से कही थी, उसमें यही दिखलाई देता है कि वह अपने मन को, अपने आपको साधने की बात कर रहा था। जो कुछ भी हमारे व्यवहार, विचार, कर्म और जीवन को प्रभावित करे, परिवर्तित करे और अपने अनुरूप ढाले, वह बंधन कहलाता है जिसे हमलोग योग की भाषा में कहते हैं ग्रंथि।

कुछ चीजें मन में संकीर्णता लाती हैं और कुछ संकीर्णता से मुक्त करने के लिये होती हैं। नकारात्मक गुण मनुष्य को संकीर्णता का अनुभव दिलाते हैं जबकि सकारात्मक गुण मनुष्य को व्यापकता का अनुभव दिलाते हैं। नकारात्मक गुण मनुष्य की चेतना, मन, बुद्धि और सोच को छोटा कर देते हैं। किसी से घृणा, द्वेष, ईर्ष्या या क्रोध हो जाए तो उस व्यक्ति के बारे में हमारा सोच-विचार बहुत सीमित और संकीर्ण हो जाता है। जीवन में जो भी नकारात्मक तत्त्व हैं, वे मनुष्य को सीमित और संकीर्ण बनाते हैं। ऐसे में मन को कैसे संभाला जाए?

मन को संभालने का जो तरीका हमारे अध्यात्म-शास्त्रों में बताया गया है वह यही कि अपने मन को सकारात्मक रखो। मतलब मन को सीमित और संकीर्ण मत होने दो। जब तक मन सीमित और संकीर्ण नहीं है, तुम योगी हो। लेकिन जिस दिन तुम्हारा मन सीमित और संकीर्ण हो जायेगा तुम भोगी बन जाओगे। भोग या सम्बन्धों के कारण जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं वे हमारे जीवन में ग्रंथि बनती हैं, गाँठ बन जाती हैं। वही हमारे स्वभाव का निर्माण करती हैं।

योग में ग्रंथियों को तीन रूपों में समझाया गया है—ब्रह्मग्रंथि, विष्णुग्रंथि और रुद्रग्रंथि। ब्रह्मग्रंथि मनुष्य की चेतना को, बुद्धि को भौतिक बनाकर रखती है। आध्यात्मिकता के बजाय भौतिकता को प्राथमिकता दी जाती है। ब्रह्मग्रंथि का सम्बन्ध है भोग के साथ। मनुष्य के जीवन में जो कामना या वासना होती है, चाहे वह धन-सम्पत्ति की हो, चाहे पति-पत्नी की हो, चाहे किसी भी प्रकार के भोग की हो, वे सब ब्रह्मग्रंथि द्वारा संचालित होती हैं। यह है ब्रह्मग्रंथि का क्षेत्र।

विष्णुग्रंथि दूसरी ग्रंथि है जहाँ पर भोग नहीं, सम्बन्ध है। मैं आपसे कैसे सम्बन्धित हूँ? आप मेरी माता हैं, आप मेरे पिता हैं, यह मेरा भाई है, वह मेरी बहन है—मतलब एक सम्बन्ध है जो दो व्यक्तियों का साथ लाता है। मैं अपने आपको एक मनुष्य के रूप में जो देखता हूँ, वास्तव में एक सम्बन्ध को देखता हूँ और सम्बन्धों का क्षेत्र है विष्णुग्रंथि।

तीसरी ग्रंथि है रुद्रग्रंथि जिसका साधु कृत्य के साथ, परिवर्तन के साथ सम्बन्ध है। शिवजी का एक नाम है महाकाल। काल परिवर्तन का द्योतक है। परिवर्तन से समय की गति का आभास होता है। अगर परिवर्तन न हो तो समय थम जाता है। इसलिए ब्रह्माण्डीय स्तर पर शिव तत्त्व को महाकाल कहा गया है। महाकाल मतलब जो परिवर्तन को बतलाता है, एक को तोड़कर दूसरे का निर्माण करता है, एक का संहार करके दूसरे का सृजन करता है। रुद्रग्रंथि का स्थान है भ्रूमध्य में, जिसके खुलने पर व्यक्ति विशेष के अनुभव समाप्त हो जाते हैं और ब्रह्माण्डीय अनुभवों को मनुष्य समझ पाता है।

इन ग्रंथियों को हमारी परम्परा ने अनेक रूपों में देखा और समझाने का प्रयास किया है। पुराणों में त्रिपुर की कहानी आती है। एक समय राक्षसों ने तीन हवाई नगर बनाये जिनमें पहला था सोने का, दूसरा था चाँदी का और तीसरा था लोहे का। ये तीन पुर हमेशा पृथ्वी का चक्कर काटते रहते थे और कभी भी एक सीध में नहीं आते थे। ऊपर रहकर धरती पर विध्वंस करते थे। तब देवता लोग शिवजी के पास गए और कहा कि त्रिपुर के दानवों ने बहुत बड़ा उत्पात मचाया है, उन्हें खत्म करना है। शिवजी ने कहा, 'हाँ, हम तुम्हारी सहायता करेंगे, लेकिन तुम लोग पहले पशु बनो।' सब देवता पशु बने, शिवजी सबको लगाम लगाकर स्वयं पशुपति बने और उसके बाद फिर अपना धनुष उठाया, बाण का संधान किया और प्रतीक्षा करने लगे जब तक तीनों पुर घूमते-घूमते एक साथ दिखलाई नहीं दें। हजारों वर्षों में एक ही बार ऐसा मुहूर्त आता था जब तीनों एक सीध में होते थे। वही एक समय था जब शक्तिशाली अस्त्र द्वारा इन पुरों को एक साथ भेदा जा सकता था, समाप्त किया जा सकता था। शिवजी ने प्रतीक्षा की और जब देखा कि मुहूर्त आ रहा है और तीनों पुर एक सीध में आ गए हैं, तब जाकर अपना बाण छोड़ा। वह बाण तीनों पुरों को भेदता हुआ फिर उनके पास वापस आ गया और वही है पाशुपतास्त्र।

पुराणों में बतलाया गया है कि त्रिपुर वास्तव में ग्रंथियों का प्रतीक है। लोहे का पुर ब्रह्मग्रंथि है, चाँदी का पुर विष्णुग्रंथि है और सोने का पुर है रुद्रग्रंथि। ये तीन ग्रंथियाँ हमारे जीवन को धरातल में, भौतिकता में बाँधे रखती हैं। ये उस अनुभव में बाधाएँ हैं जिसमें हमें मालूम पड़ जायेगा कि हम उस परमतत्त्व के ही अंश हैं। जब तक ये ग्रंथियाँ साफ नहीं होतीं, सब चीजें दर्शन के स्तर पर रहती हैं, पर एक बार ग्रंथियाँ साफ हो जाती हैं तो दर्शन व्यक्तिगत अनुभव में बदल जाता है।

सभी आध्यात्मिक परम्पराओं और प्रणालियों में बतलाया जाता है कि ग्रंथि-भेदन कैसे हो। हठयोग में अपने तरीके से बतलाया गया है कि प्राणायाम द्वारा, बंधों द्वारा और कुंभक द्वारा ग्रंथि-भेदन किया जाता है। राजयोग कहता है कि यम और नियम के अभ्यास द्वारा अपने मन को परिवर्तित करते हुए ग्रंथि-भेदन संभव है। ज्ञानयोग कहता है कि विवेक और वैराग्य के द्वारा ग्रंथि-भेदन संभव है। इस प्रकार योग के सभी मार्गों में इन तीन ग्रंथियों को भेदने के तरीके निश्चित किये गये हैं। ये अलग-अलग तरीके

अलग-अलग लोगों के लिये काम में आते हैं। हमारा तरीका आपके लिये नहीं होगा और आपका तरीका किसी दूसरे के लिये नहीं होगा। हठयोगी, हठयोग के मार्ग से ग्रंथि-भेदन करेगा; राजयोगी, राजयोग से ग्रंथि-भेदन करेगा और कुण्डलिनीयोगी, कुण्डलिनी योग से ग्रंथि-भेदन करेगा। चाहे कोई किसी भी सम्प्रदाय या साधनामार्ग का अभ्यासी रहे, उसे इसी मार्ग से गुजरना है जहाँ पर इन तीन ग्रंथियों का भेदन कर सके और उसके पश्चात् अनन्तता की ओर आगे बढ़ सके।

इस पाशुपतास्त्र यज्ञ का यही प्रयोजन है कि हमारे जीवन की ये गाँठें दूर हो जाएँ, हमारी संकीर्णता दूर हो जाए और हम उस आध्यात्मिक यात्रा को आरम्भ कर सकें जो हमारे जीवन का लक्ष्य है। थोड़ी देर में पाशुपतास्त्र का मंत्रपाठ आरम्भ होगा। जब आप पाठ सुनते हैं तो अपने मन में कल्पना कीजिये कि मूलाधार में एक गाँठ है, ब्रह्मग्रंथि। फिर मणिपुर और अनाहत के बीच दूसरी ग्रंथि है, विष्णुग्रंथि और भ्रूमध्य पर तीसरी ग्रंथि है, रुद्रग्रंथि। ये सब ज्योति रूप में, प्रकाशपुंज के रूप में हमारे शरीर में विद्यमान हैं। अभी इनका भेदन नहीं, केवल देखने का प्रयास कीजिये। अभी केवल अनुभव को जगाने का प्रयास कीजिये, अपने भीतर इन ग्रंथियों का साक्षी बनिये।

– 12 मई 2016, पाशुपतास्त्र यज्ञ, सत्यम् उद्यान

The Three Knots

Swami Niranjanananda Saraswati

One of the purposes of the panchagni sadhana is to break through the *granthis*, psychic knots. Society, individuality and maya – these three create knots in the life of every individual. Knots created by society are related to enjoyment: the cravings, the desires, the need for satisfaction and happiness. That is *Brahma granthi*, the knot of bhoga. The second knot is related to the individual's self-perception, self-image, self-esteem, self-projection and self-assertiveness, which define one's connections. That is *Vishnu granthi*, which sustains 'me' and gives 'me' its identity. The third is *Rudra granthi*, which is in relation to leaving and attaining – leaving the old, attaining the new; leaving the bad, attaining the good.

Nachiketa realized this when he gave his answers to Yamaraj. He said, "First, I partook of the society," representing the bhoga in life, the Brahma granthi. One's interactions in

society with family, friends, relatives, near ones and far ones, they all represent bhoga. What everyone is searching for with their connections is support, encouragement, satisfaction and push from others. It is bhoga that everyone is looking for.

The second state of mind Nachiketa experienced was self-awareness, the Vishnu granthi. The third was renunciation, the Rudra granthi. In this third state of mind he was letting go of all that could bind and hold him in the realm of maya, in order to experience the unlimited aspect of himself. These three states of mind of Nachiketa represent, according to the yogic system of thought, the concept of the granthis: Brahma granthi, Vishnu granthi and Rudra granthi.

Brahma granthi is the social or the outer input. Vishnu granthi is the individual output. Rudra granthi is the change of the social and the individual, both the input and the output, to move into a universal experience. These are identified as the three main conditions of mind or states of consciousness of an individual. When you are in the material consciousness, you are at the Brahma granthi level. You are enjoying everything: the sun is nice, the wind is nice, the moon is nice, the stars are nice, the people are nice, the movie is nice, the food is nice, the cloth is nice. That is bhoga.

When you become aware of yourself, 'This is my need, this is what I want to do, this is what I hope to do, this is what I wish to do', that is Vishnu granthi. The only reason you express the sentiments of anger, frustration, irritation, jealousy and hatred is to assert your identity. You take the help of all the negatives in life to assert yourself, prove yourself and satisfy yourself.

If you take the help of the positives in life, then there is no 'self' awareness; the awareness becomes broader and universal. It is not limited to oneself; it is not limited to self-perception or self-projection. This universal awareness is attained when one rises above Vishnu granthi and pierces through Rudra granthi. The drive to change the negative 'me' into a positive 'me' is Rudra granthi, for the negative always connects you to the world, and the positive frees you from the world.

Thus the granthis represent the states of mind that are present in your life all the time. The negatives restrict, confine and limit your actions, responses, knowledge and behaviour; whereas the positive always expands your perception, knowledge, responses, attitude and behaviour. The world is guided by the negative forces while the positive forces are only inspiration. You feel inspired, yet you are guided by the negative. In spiritual life, the negative has to be dropped and the positive has to be adopted. The granthis, the psychic knots that create a particular condition within you, have to be broken. That is where the challenge lies.

Different traditions have defined different methods for breaking the knots. In hatha yoga, for example, to break the granthis you need to do specific practices, whether pranayama, bandha or kumbhaka. In raja yoga, the granthis are transcended with the practice of yama and niyama. In jnana yoga, you can overcome and transcend the granthis with viveka and vairagya. Each yoga has defined, according to its nature, a system by which you can transcend, overcome and pierce these granthis. No matter which yoga you take up, you have to be systematic, and through sustained effort it is possible to break the granthis.

The main theme of spiritual life is to pierce through the granthis; only then will luminosity dawn. That is why all the traditions of spirituality ask you to work to overcome the limited, the defined and the tamasic self, and connect with your higher nature. That is how you can be free from the limitations that you face in your life.

– 12 May 2016, Pashupata Astra Yajna, Satyam Udyan

Granthi Bhedan in Different Traditions

Swami Niranjanananda Saraswati

Granthis represent limitation: limiting, blocking, defining or restricting something. When you restrict the free expression or free flow of something, you are blocking its freedom; that is known as *granthi*. You create a condition, a limitation, you create boundaries, defining the area in which that quality or condition can move, function, work, act and exist in. The creating of the conditioning is known as granthi, not only at the individual level, but at the cosmic level as well – affecting the individual. Granthi is in fact the cosmic conditioning, the cosmic knot, the cosmic block that is reflected in you. The granthis define where you live, express, experience and die. They define the nature that you express in your life.

Yoga defines three granthis – Brahma granthi, Vishnu granthi and Rudra granthi – and relates them to the chakras. According to kundalini and kriya yoga, the first granthi is at the level of mooladhara chakra, the second granthi is above manipura chakra, and the third granthi is at ajna chakra. Every branch of yoga speaks of granthis and defines a particular method by which they can be tackled in one's body and personality.

The three questions that Yamaraj asked Nachiketa, and the three answers that Nachiketa gave, indicate the conditions created by the granthis. In the first answer, 'prajam ta iti', Nachiketa said that he observed the nature of Brahma granthi, the social and external inputs that he received. Everything that you receive from outside, that which is external to you, the

sensorial, the mundane, the material, is 'praja'. That is what he witnessed.

Vishnu granthi indicates interaction with one's own self: 'my self-image, my self-prestige, my self-perception, my self-expression, my needs, my desires'. This self-oriented awareness is Vishnu granthi.

The transformative condition is Rudra granthi, which changes the old to create something new; it is the catalyst for change. This change always happens in one direction, from the material to the spiritual. Thus, *praja*, the social, is the first aspect – Brahma granthi. *Pashu*, the self, is the second aspect – Vishnu granthi. *Sadhuta*, the pious, the good, is the third aspect – Rudra granthi, the changed form.

Although all yogic scriptures recognize the existence of granthis, each system or branch of yoga has devised a particular method to transcend these limiting conditions that bind one's nature to the world of the senses and sense objects. Every spiritual aspirant, no matter which path he or she follows, has to break through the granthis. No matter how advanced you think you are, whether you have been meditating for years, whether you have gone through the sequence of pratyahara, dharana and dhyana, finally you have to work on the granthis, as they represent the shift of consciousness from the gross to subtle to transcendental. All practitioners of yoga have to remember that the basic conditioning has to change, without which, even twenty or thirty years of meditation will not give the final result. These basic conditionings are the attractions and the pulls, the expression of samskaras in your behaviour, your desires, needs and aspirations in life.

In hatha yoga, pranayama, bandha and kumbhaka are used to open the granthis: pranayama for Brahma granthi, bandhas for Vishnu granthi, and kumbhaka for Rudra granthi.

In raja yoga, yamas are used for Brahma granthi, as they lead you to restraint in your interaction with the outside world. Niyamas are used for Vishnu granthi, as they take you to the state of discipline where you are able to contain and control

yourself, the pashu. Pratyahara is used for Rudra granthi, as the gradual withdrawal from the outer into the inner leads to *tyaga*, renunciation, leaving behind.

Jnana yoga says that Brahma granthi is tackled through *viveka*, discrimination, in what you do and how you do it. There has to be viveka in how you think, act and live, in how you eat, walk and talk. In relation to oneself, there has to be vairagya; one has to learn how to detach from oneself. In relation to sadhukritya, there has to be jnana. The awareness, the knowledge, the understanding, the wisdom has to be there.

Tantra uses visualization of the symbol of the Shivalinga and the corresponding mantras. You visualize the *dhumra lingam* in Brahma granthi: the cloudy and hazy lingam, indicating the condition where you are caught up in many things and immersed in *ajnana*, ignorance. You visualize the *bana lingam* in Vishnu granthi: the red or gold lingam, indicating the desire for self-fulfilment as well as a subtle form of self-awareness. You visualize the *itarkhya lingam* in Rudra granthi: the black lingam with a clear outline, indicating the state where there is one-pointedness and clarity. Then finally you visualize the *jyotirlingam*, the luminous lingam, in sahasrara, indicating the state achieved through the piercing of the granthis. In this way, tantra aims to purify and pierce the three granthis by using symbols and mantras, and to experience the state attained thereafter.

The *Bhagavad Gita* also indicates the way to transcend the granthis. It says that the tendency to accumulate, which relates to the Brahma granthi, has to be transcended through charity, by learning how to give. By developing the state of mind where you do not wish to take or accumulate, instead you let go and give, you can overcome the effects of the Brahma granthi. For the second block, Vishnu granthi, the statement in the *Gita* is to practise tapas, so that you recognize yourself, your limitations and negative conditions, and make a conscious effort to change them into a positive condition. For the third, Rudra granthi, Sri Krishna recommends yajna, as yajna connects you with everything around you.

In this manner, many masters, scriptures, paths and traditions have each provided a particular approach to overcome the blocks and achieve *granthi bhedan*, the piercing of the granthis. Through all these different methods, it is possible to overcome the effects of the granthis on your mind at present.

Although there is not much description of the granthis in the texts and you may not be able to have direct perception of the granthis, what is relevant is that a spiritual aspirant advancing on the path has to eventually face the challenges that arise from within. After all, you cannot expect to attain peace, inner fulfilment and contentment only by practising asana for twenty years. You cannot expect to attain peace and tranquillity by practising pranayama, ten rounds every day, for ten years. The practices have their purpose, and once they fulfil their purpose you have to move on to the next stage. No one has attained moksha, jnana or realization through the practice of asana and pranayama alone. Every positive change took place when the asana and pranayama fulfilled their purpose and you started to work with yourself, with your nature, mind, emotions and consciousness. That is pratyahara, that is dharana, and that is dhyana.

It is when you face the conditionings that block your growth, and work to remove those blocks, that you advance in spiritual life. The adherents of hatha yoga have followed one path to achieve this, as it was part of the hatha yoga teachings. Similarly, the adherents of raja yoga, jnana yoga, other yogas or tantra have each followed their own method. Therefore, depending on your path, you have to follow the principles and precepts that give you the means to overcome a condition, a block, a state of mind that binds you, that holds you to this dimension. From the Shaivite perspective, the panchagni sadhana is a potent method to overcome these blocks, and the Pashupata Astra Yajna complements it.

– 12 May 2016, Pashupata Astra Yajna, Satyam Udyan

सहनशीलता की साधना

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

पंचाग्नि तपस्या मन को खोलने की एक प्रक्रिया है। साथ ही यह ग्रंथियों की भेदन साधना भी कहलाती है। इसके अलावा भी इस तपस्या की एक अहम भूमिका है—यह अपने भीतर सहनशीलता बढ़ाती है। हमलोग सहनशील नहीं हैं। थोड़ी-सी गर्मी तो परेशान, थोड़ी-सी ठण्ढी तो परेशान। थोड़ा कम खाने को मिला—परेशान, थोड़ा अधिक काम हो गया—परेशान, नींद नहीं आयी—परेशान, किसी ने कुछ कह दिया—परेशान। हमलोगों में सहनशीलता नहीं है। सहनशील बनने से फिर वह ग्रंथि भेदन होता है, वरना अपने से नहीं होता। और यह जीवन भी तो इसी के लिये हमें दिया गया है। सहनशील बनो, दु:ख को भी सहो, अपमान को भी सहो, यश को भी सहो, सफलता को भी सहो, सब कुछ सहो। जब तुम इन सब को समान रूप से सहते हो, और उससे लाचार नहीं होते, अपने आपको पराजित नहीं समझते, तब भेदन होता है ग्रंथियों का।

पंचाग्नि तप में तो कितना सहना पड़ता है। पाँच अग्नियाँ बाहर हैं तो पाँच अंदर भी हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद—ये पाँच अग्नियाँ भीतर जल रही हैं। बाहर की तो सह लोगे, पर अंदर वालों के लिये सहनशीलता बढ़ानी पड़ती है। इसीलिये यह साधना निर्देशित है जिसे हमारे गुरुदेव ने रिखियापीठ में नौ सालों तक किया। उन्होंने तो हमलोगो को अनेकों परम्पराएँ दी हैं, पर हम समझते हैं कि जो पंचाग्नि परम्परा उन्होंने हमलोगों को दी वह अमूल्य है। और यह उसे करने के बाद पता चलता है। कुछ तो पता चलता है। वह भेदन होता है। स्वामीजी कहते थे कि यह धरती और स्वर्ग को जोड़ने का एक माध्यम बनता है। हमारी चेतना का उत्थान होता है, हमें केवल इस धरती की नहीं, अन्य चीजों का भी आभास होने लग जाता है। मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली मानती हूँ कि इस पंचाग्नि साधन की पूर्णाहुति के अवसर पर मैं यहाँ पर हूँ आज। और जितने भाग्यशाली हम हैं, उतने आप सब भी हैं। नमो नारायण।

—13 मई 2016, पाशुपतास्त्र यज्ञ, सत्यम् उद्यान

संन्यास जीवन का आधार - त्याग और तपस्या

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पंचाग्नि एक गहन, कठिन साधना है जिसे हमारे गुरुजी ने कलियुग में स्थापित किया। अभ्यास तो औरों ने भी किया, लेकिन एक साधना पद्धति के रूप में, एक तपस्या पद्धति के रूप में हमारे गुरुजी ने इसकी स्थापना की। स्वामी सत्संगी जी को तथा हमें उनका यह निर्देश रहा कि अगर तुम संन्यास मार्ग में आगे बढ़ना चाहते हो, समझना चाहते हो कि यह मार्ग है क्या, तब फिर संन्यासी जैसा जीवन जीना सीखो, और संन्यासी का जो जीवन होता है वह त्याग और तपस्या का होता है, यश और वैभव का नहीं।

हमारे समाज में आज प्राय: जितने संन्यासी हैं, साधु हैं, उन सब में विद्वत्ता अवश्य है, लेकिन तपस्या का अभाव अभी दिखलाई देता है। साधना कम है, विद्वत्ता अधिक है और तपस्या तो शून्य है। इसने आध्यात्मिक जीवन में एक असंतुलन उत्पन्न किया है क्योंकि बिना तपस्या द्वारा अपने आपको साधे लक्ष्य तक पहुँचना संभव नहीं है। केवल विद्वत्ता और साधना के बल पर हम अपने लक्ष्य तक पहुँच जायें, ऐसा संभव नहीं। इस जीवन का मात्र एक ही आयाम नहीं, बल्कि अनेकों आयाम होते हैं और इस बहुआयामी जीवन में एक विधि से ही नहीं, बल्कि अनेकों विधियों के मिश्रण से एक साधना का स्वरूप तैयार होता है। आलू को कच्चा खा सकते हो क्या? नहीं, आलू को खाने के लिये उसे पकाना पड़ेगा और जब पकाओगे तो अनेक प्रकार के द्रव्यों और तत्त्वों का उसमें मिश्रण होगा। पहले आलू पानी में उबलेगा, उसकी कठोरता जायेगी, फिर तुम उसमें नमक-मसाला वगैरह डालोगे, उसमें स्वाद आयेगा, उसके बाद ही उसका भक्षण करोगे। तब जाकर कहोगे कि हाँ, सब्जी अच्छी बनी है। आलू आलू ही है, लेकिन अब कच्चा नहीं है, उसे एक विधि से तैयार किया गया है, खाने योग्य बनाया गया है।

उसी तरह आध्यात्मिक जीवन में भी विभिन्नतायें बहुत हैं, साधनायें और विधियाँ बहुत हैं और एक को ही पकड़ोगे तो समझ में नहीं आयेगा। लेकिन जब एक गुरु के निर्देश में तुम सब्जी को बनाना सीखोगे तब उसका स्वाद आयेगा। निश्चित रूप से कच्चे से तो अधिक। इसलिए जब गुरुजी ने कहा कि अगर तुम लोग संन्यास को सिद्ध करना चाहते हो, जानना चाहते हो, अनुभव करना चाहते हो तो इस साधना को समझो, तो हमलोग इसमें तत्परता के साथ तल्लीन हो गए। संन्यास परम्परा में यह सबसे कठिन साधना मानी गई है, और सबसे श्रेष्ठ भी।

यमराज ने नचिकेता को इसी विद्या का ज्ञान दिया था, और पंचाग्नि को लोग नचिकेता अग्नि के नाम से भी जानते हैं। इस साधना का प्रयोजन है ग्रंथियों का भेदन, क्योंकि ग्रंथियाँ भोग, सम्बन्ध और माया से जुड़ी हैं। इन्हीं ग्रंथियों का अतिक्रमण शुद्ध चेतना के द्वारा किया जाता है। काम और क्रोध रजोगुण से उत्पन्न होते हैं– *काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः*। उसी प्रकार अन्य भावनाएँ और वृत्तियाँ अलग-अलग गुणों से उत्पन्न होती हैं, जो तुम्हारे जीवन की दिशा को निर्धारित करती हैं। जो भी सद्गुण-दुर्गुण होते हैं वे तुम्हारा व्यक्तित्व बनते हैं और ग्रंथि का रूप लेते हैं। ग्रंथि का मतलब एक अवस्था, एक स्थिति, एक गाँठ। इन ग्रंथियों का भेदन ही अध्यात्म का लक्ष्य होता है। मोक्ष वगैरह तो बहुत दूर की बात है, पहले ग्रंथियों का भेदन आवश्यक है क्योंकि उसी से फिर मन और चेतना में परिवर्तन संभव हो पाता है।

इस पाशुपतास्त्र यज्ञ में शिव की शक्ति का आवाहन भी हो रहा है। पाशुपतास्त्र एक ऊर्जा है, एक शक्ति है शिव की। लोग अस्त्र का नाम सुनते हैं तो सोचते हैं कि किसी को मारने के लिये ही इसका प्रयोग होता है। लेकिन यहाँ पर अस्त्र का प्रयोग मारने के लिये नहीं, बल्कि एक परिस्थिति को बदलने के लिये है। और वह है हमारे मन की, हमारी चेतना की परिस्थिति।

इस शक्ति का आवाहन मंत्रों द्वारा होता है। जब यहाँ पर मंत्रों का पाठ चलता है तब आप भी मन में ॐ नमः शिवाय या महामृत्युंजय मंत्र या ॐ मंत्र का मानसिक जप करना, और अपने मन के दरवाजे को खुला रखना। जब तक दरवाजा खुला है, अच्छी हवा आती है। दरवाजा बंद कर दोगे तो अपने ही ताप में, अपनी ही गर्मी में जल जाओगे। गर्मी के दिन में कमरे का दरवाजा-खिड़की बंद करके बैठो तो लगता है हम उसी गर्मी में स्वयं को जला देगें। पर जब खिड़की-दरवाजा खोलकर बैठ जाएँ तो हवा आती है, सुख मिलता है।

सामान्य रूप से हमलोग अपने मन के, अपने जीवन के खिड़की-दरवाजों को हमेशा बंद रखते हैं और स्वजनित ताप में स्वयं को जलाते रहते हैं। बंद कमरे को कहते हैं ग्रंथि, जहाँ पर आदमी खुद को जलाता है। उस ग्रंथि में, उस बंद क्षेत्र में फिर सुख और शान्ति का आवागमन नहीं हो पाता। इसलिये जब तक यहाँ हो, अपने मन के सभी दरवाजे और खिड़कियाँ खुले रखना। विशेषता यह कि अगर मन

के खिड़की-दरवाजे खुले हैं तो वाणी अपने आप चुप हो जाती है। वाणी और मन का यह सम्बन्ध रहता है। अगर मन के खिड़की-दरवाजे बंद हैं तो मुँह चलना शुरू होता है और आदमी बक-बक करते रहता है। जब मन के खिड़की-दरवाजे खुल जाएँ तो मुँह अपने ही आप बंद हो जाता है, मन शान्त और स्थिर हो जाता है। यह एक बहुत अच्छा अवसर है जिसमें आप बिना परिश्रम के, एक शान्त वातावरण में बैठकर अपने मंत्र का जप करना, अपने मन के दरवाजे खुले रखना।

– 13 मई 2016, पाशुपतास्त्र यज्ञ, सत्यम् उद्यान

Pashupata Vidya

Swami Niranjanananda Saraswati

The Pashupata Astra Yajna is an ancient invocation. The anusthana was last conducted by Arjuna during the time of Sri Krishna. After the Mahabharata war, the knowledge receded into the background, and for all these centuries people in society did not feel the need to revive it.

When our guru, Sri Swami Satyananda, gave instructions to commence the panchagni sadhana, to explore and experience

the real essence of sannyasa and spiritual life, he also instructed us to revive the traditions now becoming lost to humanity. The purpose is to remember what was given to us by our forefathers for our peace and wellbeing. Thus the Pashupata Astra Yajna was resurrected from the ancient systems.

It has become a natural conclusion for the panchagni sadhana as they both belong to a specific spiritual tradition called the Pashupata sampradaya. This is the oldest spiritual tradition in the world. Earlier than the advent of any rishi, muni or seer, it was propounded by Lord Shiva himself, when he gave instructions on yoga and spiritual life. These instructions are encapsulated in the Pashupata vidya.

The concept of 'pashupata' concerns mastering the animalistic tendencies within oneself. *Pashu* means animal and *pati* or *pat* means to master: to become the master of the animals and demons that control your life. By trying to master them, you become purer, more luminous and sattwic, as opposed to becoming more involved in the world of senses and sense objects and losing awareness of the spiritual dimension, which is what happens when you do not control them.

The Pashupata vidya has five components. One, the *Pashupata sampradaya*: the community that follows the precepts, thoughts, principles and ideas of the Pashupata tradition, where a lifestyle is lived according to the precepts of the Pashupata system.

The second is *Pashupata darshana*: the philosophy and understanding of the Pashupata vidya. It includes the aspiration of the tradition and the path to attain that aspiration; the methods, the practices, the pitfalls, the achievements, the successes and failures.

To know the successes along with the failures is important. Everybody talks about the good that can happen to a person in life, but few people talk about what one has to watch out for in order to attain success. You are told what to do to attain success, but what do you watch out for? Nobody tells that. Swami Sivananda did tell. He said, "Be observant of your

mental states, your thoughts, criticisms, doubts, all that you go through." Yet, it is a rare aspirant who comes to this point.

Thus, in the philosophy, the *darshana*, not only are the successes and achievements enumerated, but also the pitfalls and the impediments that do not allow you to progress. They have to be overcome as well. Merely learning new things, as is the tendency, is not enough. Everyone asks, "What is the new thing I can learn today? What is the new thing that I can learn tomorrow?" No. Instead of learning new things, apply your learning to the old pitfalls you already know about and become better at crossing them. Instead of learning new things, look out for the blocks that have held you back so far and not allowed you to progress, and manage them. This is covered in the darshana.

The third component is Pashupata yoga, the means to attain the goals set by the darshana. The *Pashupata yoga* is the original yoga, and is comprised of five yogas: sparsha yoga, bhava yoga, abhava yoga, mantra yoga, and maha yoga. In the course of time, from these five yogas emerged hatha yoga, raja yoga, kriya yoga, kundalini yoga, mantra yoga, nada yoga, laya yoga. Every yoga that we know today is an evolute of the original five yogas of Pashupata. That indicates the vast scope of Pashupata yoga.

The fourth component of Pashupata vidya is *panchagni*, the sadhana of the five fires, intended for people who are able to renounce the attachments and attractions of the world.

The fifth component is *Pashupata astra*, the weapon of Pashupati or Lord Shiva. As the culmination of panchagni, the final invocation of Lord Shiva is done through the Pashupata Astra Yajna, which invokes Shiva's power. This is the anusthana you are all witnessing, and it is being performed on earth after a gap of about 5,500 years. The mantras that were heard during Sri Krishna's age are being heard again on this planet today, in the city of Munger, now for the third year.

– 14 May 2016, Pashupata Astra Yajna, Satyam Udyan

सकारात्मक संकल्प

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

आज यहाँ ऐसा लग रहा था कि अगर हमारा हर दिन ऐसा ही शुरू हो, हर दिन सुबह-सुबह मंत्र हमारे कानों में गूँजें और इतना सुन्दर दृश्य हमें दिखायी दे, तो कितना अच्छा दिन गुजरेगा। हम सुबह-सुबह यही सोच रहे थे क्योंकि आज सुबह से ही हमलोग इस मंगलमय वातावरण में हैं। अगर कुछ क्षणों के लिये भी हर रोज सुबह घर में यह वातावरण बनायें तो इसका पूरे घर-परिवार पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ेगा। और ऐसा वातावरण आराम से बन सकता है, कुछ खास नहीं करना है, केवल मंत्र उच्चारण ही तो करना है। अगर खुद नहीं कर सकते तो सीडी बजा दीजिये। कम-से-कम बच्चे अच्छे मंत्र सुनेंगे, फिल्मी गाने तो नहीं।

इस तरीके से रोज अपना दिन आरंभ करना अपनी ओर सकारात्मक ऊर्जा बुलाने की एक विधि है। हम हमेशा नकारात्मक सोच में डूबे रहते हैं, अपने आपको कोसते रहते हैं, पर सत्य तो यह है कि हम ही अपनी तरफ वह नकारात्मक ऊर्जा खींच रहे हैं। नकारात्मक सोच से, नकारात्मक वाणी से, नकारात्मक संगत से हम अपने चारों ओर एक नकारात्मक मंडल बना लेते हैं और फिर उसमें वही ऊर्जा आती रहती है।

हम उसी को ग्रहण करते रहते हैं और सोचते रहते हैं कि क्या हो गया, पूरा समय भय, चिन्ता और ग्लानि में क्यों चला जाता है?

इसलिये आज के दौर में मंत्रों के माध्यम से सकारात्मक रहना बहुत आवश्यक हो गया है। ये जो वैदिक मंत्र आप सुन रहे हैं, इनमें बहुत तेज है, बहुत शक्ति है, बहुत ज्ञान है। ये अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। हम केवल बाहर की अग्नि जलाने की बात नहीं कर रहे, भीतर की अग्नि को भी तो प्रज्वलित करना है। उस ज्ञानाग्नि को कैसे प्रज्वलित करेंगे? आखिर वह भी तो एक अग्नि है न! किसी चीज को चाहना, किसी चीज को हासिल करना, वह तो अग्नि के कारण ही होता है। जो भी आपकी संकल्प-शक्ति है, उसे बल मिलता है अग्नि से। बिना संकल्प-शक्ति के हम तो केवल सपने ही देखते रहेंगे कि हम यह करेंगे, वह करेंगे, पर वास्तव में कुछ होता नहीं है, क्योंकि संकल्प-शक्ति कमजोर है। संकल्प-शक्ति बढ़ाने के लिये अग्नि का आवाहन करना पड़ता है। इसलिये वेदों में अग्नि को ही सबसे श्रेष्ठ माना है। वे ही हमारे पथ को प्रकाशित करते हैं।

पंचाग्नि की पूर्णाहुति पर आयोजित इस पाशुपत यज्ञ में हम सब यहाँ पर एकत्रित हुये हैं। इस समय हम सबको अपने संकल्प को मजबूत और दृढ़ बनाने का विचार करना चाहिये। जीवन में जो भी हासिल करना हो, चाहे वह सांसारिक हो या आध्यात्मिक, उसके लिये संकल्प-शक्ति की आवश्यकता है। हमारे गुरुदेव के संकल्प थे—सुख, शांति और समृद्धि। उसमें हमने तीन और जोड़ दिये हैं जो आज बहुत जरूरी हैं—स्वास्थ्य, सुरक्षा और स्थिरता। इन छः चीजों का संकल्प लेकर हमलोग आगे बढ़ें, यही हमारी आशा और शुभकामना है। नमो नारायण।

— 14 मई 2016, पाशुपतास्त्र यज्ञ, सत्यम् उद्यान

भगवान का आशीर्वाद

भगवान का आशीर्वाद व्यक्ति को प्रतिदिन पाना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक निश्चित नियम का पालन करो। कम-से-कम दो बार प्रतिदिन भगवान से सम्बन्ध जोड़ना चाहिए, सुबह और शाम। कभी बीमार रहे, नहीं नहाये, तो कोई बात नहीं, यूँ ही बन्द कर दिया अपने को थोड़ी देर के लिए। उस समय अपने डॉक्टर, वकील, प्रधानमन्त्री, पति, पत्नी— सब से पूर्णतः अलग हो जाना चाहिए। बिल्कुल नंगा हो जाना चाहिए। भगवान के सामने नंगा होना पड़ता है, और उसके बाद दुनिया का काम करो। उनकी शरणागति, उनकी लीला का श्रवण, उनके नाम का भजन, उनकी पूजा-अर्चना और उनके बारे में सतत् विचार, यही पहला कर्त्तव्य है।

— स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

The Tradition Continues

Swami Niranjanananda Saraswati

Panchagni is a beautiful sadhana. It is difficult. It is not easy or simple. It is not meditation, it is not mantra japa; it is the act of just sitting in-between the four fires, with the fifth fire above in the form of the sun. In order to succeed in this sadhana, you have to like the sadhana, as it affects you at various levels: the physical, the psychological and the spiritual.

Water and fire

During this panchagni, I understood the complementary actions of fire and water. Although the focus is on fire, it is the water you have to maintain, as in the absence of water, fire is going to burn you completely. Interestingly, in the *Apah Sukta*, the verses on water in the Vedas, it speaks of panchagni. It says, "Through you, may the fire in the body be balanced." There is a whole description of how water balances the fire. This led to another thought. If a log is burning, how much water would be required to douse the fire? One glass? Not enough. One handful? Not enough. Potent cause and potent action, both have to be equal. If you put a few drops of water on a log, it will only create more smoke and sparks. Therefore the amount of water required has to be known. You can have either result: positive or negative; the fire may be doused, or the smoke and sparks can increase.

You experience this in your life also, in a different manner. For example, you are angry, the fire is burning inside. How do you calm yourself? If somebody tells you, "Become quiet", it is like throwing a few drops of water on the fire; it sizzles more. You respond with, "What do you mean, become quiet?" In order to douse the anger you need to double the amount of water, to ensure that the anger is completely doused. That is the principle in panchagni, too.

When the body has to endure heat, it is water that assists it by covering the body in a film of sweat, which keeps the body cool. Similarly, when you are not able to articulate, you drink some water and articulation becomes easier. Therefore, when there is a proper amount of water in the body, when there is no dehydration, then anything coming from outside is manageable. When there is water in the air, it is easier to breathe. You cannot breathe in dry air; your throat will just burn. When there is heat in the atmosphere, rain balances it out.

People do not realize the importance of water as an element. They think water is only needed to quench thirst. In fact, nowadays many people don't even drink water; they don't even know the taste of water, especially children in big cities

who only know the taste of fizzy drinks. In such people, the internal system is absolutely destroyed.

I once saw a picture of the internal body of a person who used to drink a lot of cold drinks. This was a picture taken by the Quantum machine, and the parameters that the machine gave were all on the negative side: bad health, bad digestion, bad smell in the body, bad perspiration, bad wind, everything bad. There was no clean water in the body for *prakshalana*, cleaning. This person, who was suffering from twenty different types of illnesses, was advised, "Drink only water for one month." He followed that advice and became healthy.

Water represents life. It supports life, it nourishes life, and that is something people don't realize; other things tend to become more important. Even in my mind during panchagni, previously it was fire that was important, yet this time I realized that water is more important than fire. Different revelations do come when you are exposed to a situation.

Our spiritual inheritance

People in India say that our ancestors were sages and rishis. The *saptarishis* were seven sages who brought knowledge to the world. Their job was to establish knowledge. We are the offspring of those rishis. Even science has now discovered that the entire humanity descended from seven males and seven females. That has been established scientifically, indicating that we are descendants of people like us.

These rishis were not only concerned with their own *mukti*, *moksha* or emancipation, they were also concerned about the welfare of the society in which they lived. The society was dependent on them for knowledge, for learning the skills to survive. The seven rishis were the first teachers of humanity. They were spiritual by nature and what they did always had far-reaching consequences on human society and the civilization of which they were a part. Through their contribution, the society gradually developed and evolved from tribal to rural to urban.

Today if you think, 'What have I inherited from my forefathers? What are the samskaras that I have inherited from my forefathers, the rishis?' what will be your answer? Can you name at least one thing they have given to you and that you are living right now? This was the question I asked myself: 'What is the actual gift or contribution they have given to us?'

I found that there are many things they have given to us. Even so, I have to start with something, so I chose invocation of the three astras: Pashupatastra, Narayanastra and Brahmastra. They indicate the three powers of Shiva, Vishnu and Brahma, invoked and awakened through different types of yajnas. At the conclusion of panchagni, the power of Shiva is invoked through Pashupata Astra Yajna.

The power of Vishnu is invoked through Narayanastra Yajna held during the Lakshmi-Narayana Mahayajna. In this anusthana, the mantras are whispered and are not to be heard by anybody other than those who are part of the rituals. So while you are sitting there, you hear the kirtans, bhajans, satsangs and watch the havan, but you don't hear the mantras as they are being whispered. That is the method. The public cannot hear them; they are only to feel the effects of the mantra. Similarly, we will also be performing Brahmastra Yajna, invocation of the shakti of Brahma.

All this is a process of sadhana and research. Besides these yajnas, other aspects that were given to society by the rishis will also be looked into. Before I leave this planet, I would like to leave behind the revived traditions of the rishis, and that will be one of the tasks of Sannyasa Peeth.

– 15 May 2015, Satsang after panchagni conclusion, Satyam Udyan

आभार भरे उद्‌गार

स्वामी शंकरानन्द सरस्वती

आज बड़ी हँसी-खुशी के साथ, बड़े उत्साह के साथ पाशुपतास्त्र यज्ञ का समापन हुआ है। सभी लोगों ने हृदय से इसमें भाग लिया है और हम समझते हैं यह आनन्द स्थायी होगा, क्योंकि अगर मन में भाव है तो जिसकी प्रार्थना, जिसकी साधना हो रही है उसका आशीर्वाद तो मिलना ही है।

स्वामीजी की पंचाग्नि साधना चल रही थी और इसके विषय में स्वामीजी ने बहुत कुछ कहा है। सबसे बड़ी चीज यह कि पंचाग्नि में बाहर की अग्नियाँ तो हैं ही, भीतर की जो पाँचों अग्नियाँ हैं, उन्हें शान्त करने, उनको सहन करने की शक्ति अर्जित करने की भी यह विधि है। जो अपने अन्दर की पाँच अग्नियों को समझ सकता है, सहन कर सकता है, वही वास्तव में पंचाग्नि कर सकता है और बाहरी अग्नियों को झेल सकता है।

ऐसी स्थिति में, हम सब सभी लोग, जिनका सामर्थ्य है या सामर्थ्य नहीं भी है, फिर भी इस दिशा में सोच अवश्य सकते हैं। ऐसा आदर्श बड़े स्वामीजी ने और अपने स्वामीजी ने भी हमारे सामने प्रस्तुत किया है और सालों-साल हमारे सामने प्रस्तुत हो रहा है कि हमारे अन्दर भी कुछ प्रेरणा आए आगे बढ़ने की। जो भूमि पर पड़े हुए हैं, संसार की छोटी-मोटी चीजों में लगे हुए हैं, वे भी अपने विषय में सोचें और शायद संभव है एक कदम इस जीवन में आगे बढ़ें। सचमुच यह बहुत बड़ी प्रेरणा और बहुत बड़ा आदर्श हमलोगों के सामने स्थापित है।

यह दिव्य आयोजन इतने सुंदर ढंग से शुरू और सम्पन्न हुआ, इसके लिये सबसे पहले धन्यवाद किसे दूँ! धन्यवाद उसे दिया जाता है जो बाहर का है। यहाँ तो सभी अपने ही हैं, कौन है दूसरा जिसे धन्यवाद दिया जाए? फिर भी जो परम्परा है उसके अनुसार सबसे पहले बनारस से आए अपने आचार्यों और पंडितों को हम आश्रम की ओर से, सभी मुंगेरवासियों की ओर से बहुत-बहुत आभार प्रकट करते हैं, जो इतना कष्ट सहन करके, इतना परिश्रम करके दिनभर बारह घंटे इस अनुष्ठान में लगे रहे, और केवल औपचारिकता के रूप में नहीं, बल्कि बड़े भाव से उन्होंने इस यज्ञ को सम्पन्न किया। उनसे यही अनुरोध करते हैं कि ऐसा ही स्नेह और सम्बन्ध बनाये रखें।

इसके बाद दूसरे धन्यवाद के अधिकारी हैं मुंगेर के लोग। मुंगेर ने स्वामी सत्यानन्द जी को यहाँ बुलाया, स्वागत किया, बड़े प्रेम से रखा। और इतनी बड़ी बात कि जो संत-वैरागी थे, जिन्होंने निश्चय किया था कि हम कभी शिष्य नहीं बनायेंगे, जो परिव्राजक रूप में ही रहना चाहते थे, उनको अपने स्नेह से बाँध कर मुंगेरवासियों ने यहीं रख लिया। और मुंगेर को इतनी बड़ी देन मिली जो आज मुंगेर

को ही नहीं, बिहार को ही नहीं, भारत को ही नहीं, सारे विश्व को एक दिशा और प्रेरणा दे रही है, जिससे मनुष्य सकारात्मक ढंग से सोच सके, संकीर्णताओं से दूर हटे और जीवन में आगे बढ़ सके। मुंगेरवालों के कारण यह यश हमें प्राप्त हुआ है और इसके लिये सब मुंगेरवासियों को बहुत-बहुत धन्यवाद।

अन्त में हमारे जो अतिथि, साथी और भक्तजन देश-विदेश से यहाँ आये हैं और धूप-गर्मी सहकर इस आयोजन में बड़े भाव से भाग ले रहे हैं, जिनके चेहरे पर एक बड़ी मुस्कान रहती है, हमेशा खुशी का भाव रहता है, ऐसे हृदय से जिन लोगों ने भाग लिया है और अपना समय एवं योगदान दिया है, हम उन्हें भी एक बार धन्यवाद देते हैं, यद्यपि वे हमारे ही अंग हैं।

एक बात जो छूटी जा रही थी, और स्वामीजी ने याद दिला दी, इस यज्ञ के यजमान के बारे में है। इस सारे आयोजन के पीछे जानते हैं यजमान कौन है? वह है सप्तऋषि गोयनका। यह सप्तऋषि का योगदान और प्रयास है कि इतना बड़ा आयोजन यहाँ मुंगेर में हुआ है। अपने पुरखों की धरती पर उसने अपने दायित्व का पालन किया है, उसे सफलतापूर्वक पूर्ण किया है और इसके लिये सप्तऋषि को धन्यवाद ही नहीं, स्वामीजी की ओर से आशीर्वाद सदा-सदा सफल रहने के लिये।

अन्त में धन्यवाद की बात खत्म हो जाती है, सबकी ओर से केवल सादर प्रणाम करता हूँ स्वामीजी को और स्वामी सत्संगी जी को जिन्होंने सफलता के पीछे रहकर सब कुछ किया है और कुछ नहीं किया है। हरि: ॐ तत्सत्।

– 14 मई 2016, पाशुपतास्त्र यज्ञ, सत्यम् उद्यान

Seek Govinda

Shatrau mitre putre bandhau maa kuru yatnam vigraha-sandhau,
Bhava samachittah sarvatra tvam vaanchhasi achiraad yadi vishnutvam.
Bhaja Govindam, bhaja Govindam, bhaja Govindam moodhamate.

Do not waste your efforts to win the love of or to fight against friend or foe, son or relative. If you want to attain the Vishnu-status soon, be equal-minded under all circumstances. Seek Govinda, seek Govinda, seek Govinda oh careless minded fool!

– Mohamudgara by Sri Adi Shankaracharya (v. 24)

उपदेश-पंचकम्

जगद्गुरु आदिशंकराचार्य का जब अवतार-कार्य समाप्त हुआ और वे महाप्रयाण के लिए उद्युक्त हुए, उस समय अपनी गृहस्थ, ब्रह्मचारी और संन्यासी शिष्य-मण्डली की विनम्र प्रार्थना पर उन्होंने पाँच श्लोकों में अंतिम उपदेश दिया, जिसे साधकों के स्वाध्याय और मनन के लिए यहाँ धारावाहिक रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां,
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम् ।
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसंधीयताम्,
आत्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥ 1 ॥

सदा ऋगादि वेदों का अध्ययन करो और वेदों में कहे हुये याग, दान, होम, तप, जप आदि शुभ कर्मों का श्रद्धा-भक्ति के साथ अनुष्ठान करो। इन शुभ कर्मों के ब्रह्मार्पण द्वारा परमेश्वर की निष्काम प्रेम से उपासना करो। इस असार संसार के सकाम-कर्मों में अपने चित्त को न लगाओ। बुरी वासना रूपी पाप-समुदाय का सदाचार एवं सद्विचार से नाश करो। संसार के क्षणिक, नाममात्र के विषय-सुखों में दोषों का बारंबार अनुसंधान करो। प्रबल तत्त्वजिज्ञासा के लिए विवेकादि द्वारा महाप्रयत्न करो। वैराग्य होने पर ममतास्पद-गृह का शीघ्र ही त्याग कर दो अर्थात् संन्यास ग्रहण करो। ■

Yoga Publications Trust

Ishavasya Upanishad

ईशावास्योपनिषद्

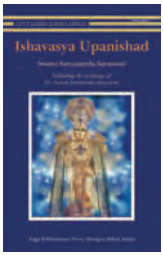

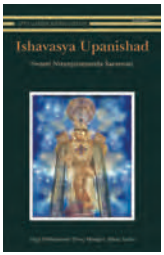

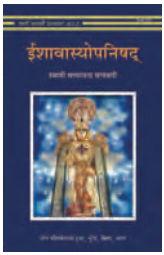

The *Ishavasya Upanishad* is a small text of eighteen verses that comprises the last chapter of the *Yajur Veda*. Considered to be the seed of the entire Indian philosophy, it is one of the most profound literary works to date.

Swami Satyananda's masterful commentary explains the vedantic concepts in the context of deep yogic insights and personal sadhana. As a result, a different light is thrown on the mantras, reaching a depth of understanding not conventionally found. The volume also includes Swami Sivananda's teachings on *Ishavasya Upanishad*.

Swami Niranjanananda's commentary makes the depth of the upanishad's wisdom accessible to all. It is not only a guide; it also indicates how the teachings of the Upanishad are relevant to the spiritual aspirant of the twenty-first century. Life, action, knowledge and the process of meditation are explained in a light that inspire the reader to connect and explore.

For an order form and comprehensive publications price list, please contact:

Yoga Publications Trust, Garuda Vishnu, PO Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811201, India
Tel: +91-6344 222430 , Fax: +91-6344 220169

A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request.

हरि ॐ

सत्य का आवाहन एक द्वैभाषिक, द्वैमासिक पत्रिका है जिसका सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जा रहा है। इसमें श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की शिक्षाओं के अतिरिक्त संन्यास पीठ के कार्यक्रमों की जानकारियाँ भी प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी योगमाया सरस्वती
सह-सम्पादक – स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती

संन्यास पीठ, द्वारा-गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, हरियाणा में मुद्रित।

© Sannyasa Peeth 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं। कृपया आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

संन्यास पीठ
पादुका दर्शन,
पी.ओ. गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201,
बिहार, भारत

अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : पाशुपतास्त्र यज्ञ, मुंगेर, 2016

• Registered with the Registrar of Newspapers, India Under No. BIHBIL/2012/44688

Sannyasa Peeth Events & Training 2017

Jul 19 2016–Jul 9	Sannyasa Experience (for nationals)
Jan 1	Akhanda Path of 108 Hanuman Chalisa
Jan 28–Feb 5	Adhyatma Samskara Sadhana (for nationals)
Jun 24–Jul 2	Adhyatma Samskara Sadhana (for nationals)
Jul 5–8	Guru Poornima Satsang program (Hindi/English)
Jul 9	Guru Paduka Poojan (Hindi/English)
Jul 9–Jul 9 2018	Sannyasa Experience (for nationals)
Jul 10–Sep 6	Chaturmas Anusthana (for nationals)
Jul 11–Aug 10	Vanaprastha Sadhana Satra I
Aug 15–Sep 13	Vanaprastha Sadhana Satra II
Sep 8–12	Sri Lakshmi-Narayana Mahayajna (Hindi/English)

For more information on the above events, contact:

Sannyasa Peeth, Paduka Darshan, PO Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811201, India
Tel: +91-06344-222430, 06344-228603, Fax: +91-06344-220169
Website: www.biharyoga.net

✉ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request